पूर्वी झवेरी

किसी भी ठोस या द्रव को गर्म करने पर उसकी अवस्था में होता है। किसी ठोस पदार्थ को गर्म करें तो वह द्रव में और फिर गैस में बदल जाता है।

पदार्थ में अणु या परमाणु एक बंधन शक्ति (Binding Potential) से आपस में बंधे रहते हैं। जब इन्हें बंधन शक्ति से अधिक ऊर्जा मिलती है तो उनका वाष्पीकरण होता जाता है। लेकिन बात सिर्फ यहीं आकर रुक नहीं जाती बल्कि किसी गैस को और गरम करते जाएं तो उसकी भी अवस्था में परिवर्तन होता है – धीरे-धीरे आणविक गैसें (molecular gases) परमाण्विक गैसों में बदल जाती हैं। इसी तरह और अधिक गर्म करने पर परमाणु भी टूट जाता है यानी कि इलेक्ट्रॉन नाभिक से अलग हो जाते हैं और गैस मुक्त रूप से घूमते इलेक्ट्रॉन और आवेशित कणों का मिश्रण हो जाती है। यह आयनिक गैसीय मिश्रण प्लाज़्मा कहलाता है। प्लाज़्मा को पदार्थ की चौथी अवस्था कहा जाता है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि प्लाज़्मा आवेशित व उदासीन कणों से बनी वह गैस है जो कुल मिलाकर लगभग उदासीन है व एक सामूहिक व्यवहार प्रदर्शित करती है।

प्लाज़्मा का अध्ययन क्यों?

वैसे देखें तो इसका अध्ययन मुख्य तौर पर दो कारणों से ज़रूरी है। पहला तो यह कि प्लाज़्मा का अध्ययन ब्रह्मांड के बारे में हमारी समझ को और गहरा करने में मददगार होगा; क्योंकि यह अनुमान लगाया जाता है कि ब्रह्मांड में 99 फीसदी पदार्थ प्लाज़्मा अवस्था में है। ज़्यादातर तारे, तारों के बीच फैला पदार्थ और गैसीय बादल (नेब्युला), सभी प्लाज़्मा हैं। यह प्लाज़्मा प्राकृतिक रूप से बना हुआ है। हम अंतरिक्ष के शेष बचे उस एक प्रतिशत हिस्से का छोटा-सा भाग हैं जो ठोस, द्रव और गैस से मिलकर बना है। इस हिस्से में प्लाज़्मा प्राकृतिक रूप से उपलब्ध नहीं होता।

दूसरा ठोस कारण जिस वजह से प्लाज़्मा का अध्ययन ज़रूरी है वो है इसके विभिन्न उपयोग। गर्म प्लाज़्मा का नाभिकीय ईंधन (Thermonuclear Fuel) के रूप में उपयोग हो सकता है। और भी कई उपयोग हैं इसके जो प्रचलन में आ रहे हैं।

सूर्य की ऊर्जा

गर्म प्लाज़्मा (10 करोड़ डिग्री कैल्विन) में हो रही संलयन (Fusion) क्रियाएं ही सूर्य और अन्य तारों की ऊर्जा का स्रोत हैं। यह प्लाज़्मा ड्यूटेरियम और ट्रिटियम जैसे तत्वों से बना हुआ है। इस संलयन में कार्फ बड़ी मात्रा में ऊर्जा निकलती है।

इंसान कोशिश में है कि इस संलयन की प्रक्रिया को धरती पर किसी तरह किया जा सके। वैसे हाइड्रोजन बम में भी इसी संलयन सिद्धांत का प्रयोग होता है, लेकिन यह ऊर्जा उत्पादन का अनियंत्रित और विस्फोटक तरीक है। प्लाज़्मा के और भी कई इस्तेमाल आजकल प्रचलन में आ रहे हैं जिनसे पदार्थों की सतह को सख्त बनाया ज सकता है, उन पर अन्य पदार्थों की परत चढ़ाई जा सकती है या उनकी सतह पर चित्र उकेरे जा सकते हैं।

कौन सी गैस प्लाज्मा

क्या किसी भी आयनित गैस को प्लाज़्मा कहा जा सकता है? अगर सवाल इस तरह से पूछा जाए तो जवाब होगा 'कतई नहीं'। वैसे तो अपने आसपास की हवा व किसी भी गैस में कुछ मुक्त इलेक्ट्रॉन होते ही हैं। आंशिक रूप से आयनित गैस पर भी बाहरी वैद्युतिक और चुंबकीय क्षेत्र का असर पड़ता है और उसमें विद्युत धाराएं प्रवाहित हो सकती हैं। फिर सवाल उठता है कि इस सबके बावजूद अगर उसे 'प्लाज़्मा' नहीं कहा जा सकता है तो आखिर प्लाज़्मा है क्या?

किसी भी आयनित गैस को प्लाज़्मा कहलाने के लिए बहुत-सी शर्तों का

अनियंत्रित विस्फोट: (ऊपर) 1954 में किया गया हाइड्रोजन बम विस्फोट। हाइड्रोजन बम का रेखाचित्र (नीचे); इसमें संलयन क्रिया को शुरू कराने के लिए विखंडन क्रिया का इस्तेमाल किया जाता है, जिससे इतनी ऊर्जा मिलती है कि संलयन क्रिया शुरू हो जाती है।

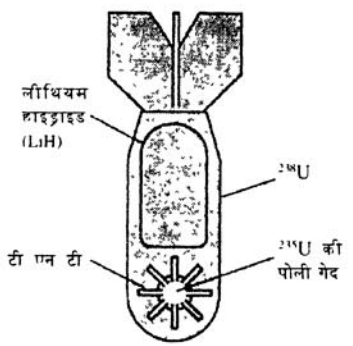

पालन करना पड़ता है। आइए देखें वे शर्तें क्या हैं।

1. किसी भी आयनित गैस में प्रत्येक आवेशित कण का एक अपना विद्युत क्षेत्र होता है। जब वे सब आवेशित कण एक सामूहिक व्यवहार प्रदर्शित करने लगें तभी उसे प्लाज़्मा कहा जा सकता है। अगर वे केवल अपने व्यक्तिगत प्रभाव तक ही सीमित रहते हैं तो नहीं।

प्रत्येक आवेशित कण एक विद्युत क्षेत्र प्रदर्शित करता है परन्तु अगर उसके आसपास अन्य आवेशित कण भी हों तो एक विशेष दूरी के बाद उसका अपना प्रभाव दिखाई नहीं देता – केवल सब आवेशित कणों का सामूहिक प्रभाव ही प्रदर्शित होता है। ये दूरी कणों के आवेश, गैस में कणों के घनत्व और तापमान पर निर्भर करती है। इसे 'डीबाई' दूरी भी कहते हैं।

इसलिए पहली शर्त तो यही हुई कि प्लाज़्मा की लंबाई इस डीबाई दूरी से कहीं ज़्यादा होनी चाहिए।

दूसरी शर्त है कि आयनित गैस में कणों का घनत्व पर्याप्त होना चाहिए (इकाई आयतन में कणों की संख्या) ताकि प्रत्येक आवेश का

अपना प्रभाव क्रमशः कम होता जाए। इसके लिए यह ज़रूरी होता है कि अगर 'डीबाई' दूरी की त्रिज्या का एक गोला बनाया जाए तो उसके अंदर एक से कहीं ज़्यादा कण होने चाहिए।

3. प्लाज़्मा में आवेशित कणों के हलन-चलन पर कोई खास बंधन नहीं होता – जब तक कि चुंबकीय बल असर न कर रहा हो। इसलिए प्लाज़्मा में अगर कहीं भी आवेश बढ़ जाता है तो कण इधर-उधर हो कर एक उदासीन स्थिति बना देते हैं और इस वजह से प्लाज़्मा में वैद्युतिक उदासीनता की स्थिति बनी रहती है। यानी कि कुल मिलाकर धनायनों व इलेक्ट्रॉनों की संख्या लगभग बराबर होती है।
4. अगर ये सब शर्तें पूरी हो भी रही हों फिर भी आवश्यक नहीं है कि प्लाज़्मा एक सामूहिक गति प्रदर्शित करे। क्योंकि साधारणतः इलेक्ट्रॉनों और आयनों के बीच होने वाले टकराव सामूहिक हलन-चलन की संभावनाओं को कम कर देते हैं। इसलिए प्लाज़्मा में यह लाज़िमी हो जाता है कि सामूहिक हलन-चलन की आवृति आयनों के टकराव की आवृति से कहीं ज़्यादा होनी चाहिए।

अगर ये सब शर्तें पूरी होती हैं तभी आवेशित कण प्लाज़्मानुमा व्यवहार प्रदर्शित करते हैं और प्लाज़्मा कहलाने की हैसियत हासिल करते हैं।

प्रयोगशाला में प्लाज़्मा

पृथ्वी पर कहीं भी प्राकृतिक रूप से 10,000 डिग्री सेंटीग्रेड जैसा ऊंचा तापमान नहीं होता, इसलिए यहां प्लाज़्मा प्राकृतिक रूप से नहीं पाया जाता। इसे बनाने के लिए विद्युतीय और चुंबकीय क्षेत्रों का उपयोग कर उदासीन गैसों का आयनीकरण किया जाता है।

अगर सामान्य रूप से गैस का आयनीकरण करना चाहें तो इसके लिए 10^9 वोल्ट प्रति से. मी. का विद्युतीय क्षेत्र चाहिए (हाइड्रोजन के परमाणु में से इलेक्ट्रॉन को बाहर खींचने के लिए इतना उच्च विद्युत क्षेत्र चाहिए)। प्रयोगशाला में भी इतने उच्च क्षेत्र को प्राप्त करना संभव नहीं है।

इसलिए प्रयोगशाला में एक व्यवहारिक तरीका इस्तेमाल किया जाता है जिसमें एक निर्वात ट्यूब में गैस को भरकर उसमें लगे कैथोड को गर्म किया जाता है। कैथोड से निकलने वाले इलेक्ट्रॉन गैस के परमाणुओं से टकराते हैं। इनके पास इतनी ऊर्जा होती है कि वे परमाणु में से इलेक्ट्रॉन को बाहर धकेलने में कामयाब हो जाते हैं।

एक और तरीका है, फोटो-आयनीकरण। इसमें उपयुक्त तरंग दैर्ध्य (Wave length) की तरंग द्वारा गैस के परमाणुओं को ऊर्जा दी जाती है। जैसे कि एक परमाणु जिसकी आयनीकरण ऊर्जा 10 ev (इलेक्ट्रॉन वोल्ट) है,

उसके लिए पराबैंगनी विकिरण की आवश्यकता होगी।

प्लाज़्मा के बनने के बाद उसके गुणों के बारे में जानना भी ज़रूरी हो जाता है जैसे प्लाज़्मा घनत्व, तापमान आदि। इसके लिए वैज्ञानिक कई तरीकों का सहारा लेते हैं जैसे कि प्लाज़्मा से निकलने वाले प्रकाश का अध्ययन, उसमें उपस्थित कणों के बारे में जानकारी, विद्युत चुंबकीय क्षेत्र में प्लाज़्मा का व्यवहार आदि।

प्राकृतिक प्लाज़्मा

प्रयोगशाला में बने प्लाज़्मा और प्राकृतिक रूप से उपलब्ध – खगोलीय प्लाज़्मा – में कुछ बुनियादी फर्क होते हैं। जैसे कि लम्बाई की ही बात करें तो प्रयोगशाला में बना प्लाज़्मा कुछ ही मीटर लम्बा होता है जबकि सूर्यमंडल के प्लाज़्मा का फैलाव 10^{11} मीटर तक है। प्रयोगशाला में बने प्लाज़्मा की सीमाएं बिल्कुल स्पष्ट (Sharp) होती हैं; जबकि खगोलीय प्लाज़्मा की सीमाएं साफ-साफ नहीं दिखाई देतीं।

सूर्य: सूर्य, हाइड्रोजन के प्लाज़्मा से बना हुआ है। उसके केंद्र में नाभिकीय संलयन क्रियाएं लगातार चल रही हैं जिनकी वजह से हाइड्रोजन, हीलियम में परिवर्तित होती रहती है। इस प्रक्रिया में काफी बड़ी मात्रा में ऊर्जा मुक्त होती है।

सूर्य के केंद्र का ताप करीब दो करोड़ डिग्री केल्विन है। सूर्य की सतह को फोटोस्फियर के नाम से जाना जाता है और इसका ताप करीब 5784 डिग्री केल्विन है। सतह पर काफी कम मात्रा में आयनन होता है, करीब 0.1 प्रतिशत। सूर्य से पृथ्वी की दूरी 15 करोड़ कि.मी. है। इसे एक खगोलीय इकाई कहते हैं। सूर्य का प्लाज़्मा लगभग 50 खगोलीय इकाई की दूरी तक फैला हुआ है। अगर इस दूरी को नापें तो यह पूरे-के-पूरे सौरमंडल को अपने घेरे में ले लेती है। इसका मतलब है कि ग्रहों के बीच के स्थान में भी आयनीकरण होता है। इन जगहों पर प्लाज़्मा का घनत्व एक प्रति घन से.मी. होता है। यह प्लाज़्मा हाइड्रोजन प्लाज़्मा है।

सोलर विण्ड: सूर्य से प्लाज़्मा कणों की बौछार चारों तरफ होती है। इसे सोलर विण्ड कहते हैं। पृथ्वी का चुंबकीय क्षेत्र इन कणों से हमें बचाता है।*

आयनोस्फियर: पृथ्वी के ऊपर 50 कि.मी. से लेकर पृथ्वी की त्रिज्या की 10 गुनी दूरी तक आयनोस्फियर फैला हुआ है। इस स्थान में मौजूद प्लाज़्मा काफी कम मात्रा में आयनित होता है। इसका घनत्व लगभग 10^6 प्रति घन से.मी है।

* देखिए संदर्भ के 16वें अंक में प्रकाशित लेख 'धरती के चुबक का असर' पृष्ठ 35.

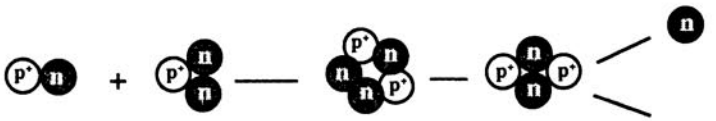

$$D + T \longrightarrow {}^{4}He + n + 17.6\ MeV$$

संलयनः ड्यूटेरियम और ट्रीटियम के बीच संलयन

न्यूट्रॉन p^{+} *प्रोटोन*

संलयन क्या है

संलयन का सीधा-सा अर्थ है जुड़ना। जब हल्के नाभिक मिलकर भारी नाभिक का निर्माण करते हैं तो इस क्रिया में ढेर सारी ऊर्जा मुक्त होती है। लेकिन इस प्रक्रिया के लिए अत्यन्त उच्च तापमान की ज़रूरत होती है। इसलिए पृथ्वी पर इसे कर पाना काफी मुश्किल है।

वैसे संलयन की सबसे उत्तम प्रक्रिया हाइड्रोजन के दो भारी आइसोटोप ड्यूटेरियम और ट्रीटियम के बीच होती है। इसके लिए रिएक्टर में करीब 10 करोड़ डिग्री सेल्सियस तापमान की आवश्यकता होती है। इस ताप पर नाभिकीय ईंधन गैसीय अवस्था से प्लाज़्मा में परिवर्तित होता है। यह ऊर्जा न्यूट्रॉन की गतिज ऊर्जा के रूप में प्राप्त होती है। संलयन के लिए आवश्यक तापमान को प्राप्त करने के लिए प्लाज़्मा को कई तरीकों से गर्म किया जाता है। इसके बाद सवाल उठता है प्लाज़्मा को बर्तन की दीवारों से दूर बनाए रखने का। ऐसा करने के लिए चुंबकीय क्षेत्र का उपयोग किया जाता है।

संलयन का ईंधन होता है ड्यूटेरियम और ट्रीटियम का मिश्रण। ड्यूटेरियम आसानी से उपलब्ध है। इसे पानी से प्राप्त किया जा सकता है। ट्रीटियम प्राकृतिक रूप से नहीं मिलता। लीथियम और न्यूट्रॉन की क्रिया से इसे प्राप्त किया जाता है। परन्तु लीथियम भी आसानी से उपलब्ध है। अगर धरती पर संलयन के प्रयोगों में सफलता मिलती है तो हमें ऊर्जा का एक तरह से अक्षुण्ण स्रोत मिल जाएगा। दूसरा एक महत्वपूर्ण फायदा है कि इसमें विखण्डन (Fission) की क्रिया के समान ऐसे उत्पाद नहीं मिलते जिन्हें ठिकाने लगाने की समस्या हो। अगर धरती पर नियंत्रित संलयन कराया जा सका तो ऊर्जा की समस्याओं से हमेशा के लिए निजात मिल पाने की संभावना बन सकती है।

पूर्वी झवेरीः विज्ञान से जुड़े व अन्य पहलुओं पर शौकिया लेखन। पूर्व में इंस्टीट्यूट फॉर प्लाज़्मा रिसर्च, गांधीनगर, गुजरात में शोधरत रही हैं। अहमदाबाद में रहती हैं। मूल लेख अंग्रेज़ी में;
अनुवादः शरबनी भट्टाचार्य; एकलव्य के होशंगाबाद प्रशिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध।